वीर संवत २४९२, फाल्गुन वद ४, गुरुवार
दि. १०-३-१९६६, ढाल-६, श्लोक-१-४. प्रवचन नं. ४७

'दौलतरामजी' पण्डित हुए हैं, दिगम्बर पण्डित (थे)। उन्होंने यह 'छहढाला' (बनाई है)। 'छहढाला' प्रचलित बहुत है, परन्तु उसके अर्थ में गम्भीरता बहुत है। छठवीं ढाला की पहली गाथा का भावार्थ। मुनिपना की बात करते हैं। मुनि कैसे होते हैं ?

मुमुक्षु :- पंचम काल के ?

उत्तर :- पंचम काल के मुनि। यहाँ तो पंचम काल के पण्डित हैं। पहले मुनि का ज्ञान कराते हैं। अन्तिम छठवीं ढाल है न ? पाँच ढाल तो चल गई। उसका भावार्थ है, देखो !

'निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक स्वस्वरूप में निरन्तर एकाग्रतापूर्वक रमण करना ही मुनिपना है।' मुनिपना की व्याख्या। आत्मा-अपना आत्मा निजानन्द स्वरूप, निज-अपना आनन्दस्वरूप (है)। ऐसे अन्तर में आनन्द में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रपूर्वक लीनता करना। अन्तर स्वरूप शुद्ध परमानन्दस्वरूप की प्रतीत, ज्ञान और रमणतापूर्वक अन्दर में लीनता करना। **'निरन्तर एकाग्रतापूर्वक रमण करना।'** उसका नाम चारित्रवंत मुनि कहने में आता है। मुनिपना का ज्ञान करवाते हैं, यथार्थ क्या चीज है (उसका ज्ञान कराते हैं)।

'ऐसी भूमिका में निर्विकल्प ध्यानदशारूप सातवाँ गुणस्थान बारम्बार आता ही है।' मुनि को अन्तर आनन्द में रमते-रमते सप्तम गुणस्थान, अप्रमत्तदशा है वह बारम्बार आती है। वहाँ से हठे (और) छठवे गुणस्थान में आते हैं तो **'पंच महाव्रत, नग्नता...'** मुनि नग्न होते हैं। **'समिति आदि अट्ठाईस मूलगुण के शुभभाव होते हैं...'** उन्हें शुभभाव राग होता है, **'किन्तु उसे वे धर्म नहीं मानते;...'** परमार्थ धर्म नहीं समझते। समझ में आया ? धर्म नहीं समझते,

उसका अर्थ परमार्थ धर्म व्यवहार धर्म-शुभभाव आता है। अन्तर आनन्दस्वरूप में शुद्धोपयोग में बहुत काल रमते हैं, परन्तु उसमें रह न सके, (तब) छठ्ठे गुणस्थान में ऐसा भाव आता है। वह शुभभाव है।

'**उस काल में उन्हें तीन कषाय चौकड़ी के अभावरूप शुद्धपरिणति निरन्तर वर्तती ही है।**' अन्तर में राग और विकाररहित, शुद्ध भगवान की निर्मल परिणति की पर्याय-अवस्था तो निरन्तर रहती है। उसको भगवान के शास्त्र में मुनिपना कहने में आया है। वे '**छह काय के...**' जीवों की हिंसा नहीं करते। '**पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावरकाय...**' वह त्रस, उसके घात की द्रव्यहिंसा (और) राग-द्वेष, काम, क्रोधादि भावहिंसा। इस भावहिंसा के त्यागी हैं। अन्तर में राग-द्वेष नहीं है, बाह्य में बाह्य की छह काय की हिंसा भी नहीं है।

'**वीतरागी मुनि यह दो प्रकार की हिंसा नहीं करते...**' अहिंसा महाव्रत का नाम अहिंसा। '**स्थूल और सूक्ष्म-ऐसे दोनों प्रकार की झूठ वे नहीं बोलते, इसलिए उनको (२) सत्य महाव्रत...**' कहने में आता है। '**अन्य किसी वस्तु की तो बात ही क्या, किन्तु मिट्टी और पानी भी दिये बिना ग्रहण नहीं करते, इसलिए...**' उसको अचौर्य महाव्रत कहने में आता है। '**शील के अठारह हजार भेदों का सदा पालन करते हैं...**' चैतन्य भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय स्वरूप में लीन रहते हैं। इसलिए उनको ब्रह्मचर्य-आत्मस्थिरतारूप महाव्रत कहने में आता है। इतनी बात तो श्लोक में थी उसकी टीका थी।

'**अब, परिग्रहत्याग महाव्रत, इर्यासमिति और भाषासमिति**' की व्याख्या दूसरे बोल में कहते हैं। मुनि की व्याख्या करते हैं। मुनि का स्वरूप तो बताना चाहिए न (कि) क्या स्वरूप है ? श्रावक की बात हो गई, सम्यग्दर्शन की बात हुई, अब मुनि की व्याख्या में अच्छी बात आयेगी।

परिग्रहत्याग महाव्रत, ईर्यासमिति[१] और भाषासमिति

अंतर चतुर्दस भेद बाहिर, संग दसधा तैं टलै
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं।
जग-सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुघद सब संशय हरैं;
भ्रमरोग-हर जिनके वचन-मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं ॥२॥

अन्वयार्थ :- (वे वीतरागी दिगम्बर जैन मुनि) (चतुर्दस भेद) चौदह प्रकार के (अन्तर) अन्तरंग तथा (दसधा) दस प्रकार के (बाहिर) बहिरंग (संग) परिग्रह से (टलै) रहित होते हैं। (परभाव) प्रमाद-असावधानी (तजि) छोड़कर (चौकर) चार हाथ (मही) जमीन (लखि) देखकर (ईर्या) इर्या (समिति तै) समिति से (चलै) चलते हैं, और (जिनके) जिन मुनिराजों के (मुखचन्द्र तैं) मुखरूपी चन्द्र से (जग सुहितकर) जगत का सच्चा हित करनेवाला तथा (सब अहितकर) सर्व अहित का नाश करनेवाला, (श्रुति सुखद) सुननेमें प्रिय लगे ऐसा (सब संशय) समस्त संशयों का (हरै) नाशक और (भ्रम रोगहर) मिथ्यात्वरूपी रोग को हरनेवाला (वचन अमृत) वचनरूपी अमृत (झरैं) झरता है।

भावार्थ :- वीतरागी मुनि चौदह प्रकार के अन्तरंग और दस प्रकार के बहिरंग परिग्रहों से रहिते होते हैं, इसलिए उनको (५) परिग्रहत्याग-महाव्रत होता है। दिन में सावधानीपूर्वक चार हाथ आगे की भूमि देखकर चलने का विकल्प उठ वह (१) ईर्यासमिति है, तथा जिसप्रकार चन्द्र से अमृत झरता है उसी प्रकार के मुनि के मुखचन्द्र से जगत का हित करनेवाले, सर्व अहित का नाश करनेवाले, सुननें में सुखकर, सर्व प्रकार की शंकाओं का

---

१. अदत्त वस्तुओं का प्रमाद से ग्रहण करना ही चोरी कहलाती है; इसलिए प्रमाद न होने पर भी मुनिराज नदी तथा झरने आदि का प्रासुक हुआ जल, भस्म (राख) तथा अपने आप गिरे हुए सेमल के फल और तुम्बीफल आदि का ग्रहण कर सकते हैं-ऐसा 'श्लोकवार्तिकालंकार' का अभिमत है। (पृ. ४६३)

दूर करनेवाले और मिथ्यात्व (विपरीतता या सन्देह) रूपी रोग का नाश करनेवाले ऐसे अमृतवचन निकलते हैं। इस प्रकार समितिरूप बोलने का विकल्प मुनि को उठता है। वह (२) भाषा समिति है।

-उपरोक्त भावार्थ में आये हुए वाक्यों का बदलने से क्रमशः परिग्रहत्याग महाव्रत तथा ईर्या समिति और भाषा समिति का लक्षण हो जायेगा।

प्रश्न :- सच्ची समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर :- परजीवों की रक्षा के हेतु यत्नाचार प्रवृत्ति को अज्ञानी जीव समिति मानते हैं; किन्तु हिंसा के परिणामों से तो पापबन्ध होता है। यदि रक्षा के परिणामों से संवर कहोगे तो पुण्यबन्ध का कारण क्या सिद्ध होगा ?

तथा मुनि एषणासमिति में दोष को टालते हैं; वहाँ रक्षा का प्रयोजन नहीं है, इसलिये रक्षा के हेतु ही समिति नहीं है। तो फिर समिति किसप्रकार होती है ? मुनि को किंचित् राग होने पर गमनादि क्रियाएँ होती हैं, वहाँ उन क्रियाओं में अति आसक्ति के अभाव से प्रमादरूप प्रवृत्ति नहीं होती, तथा दूसरे जीवों को दुःखी करके अपना गमनादि प्रयोजन सिद्ध नहीं करते, इसलिये उनसे स्वयं दया का पालन होता है; - इस प्रकार सच्ची समिति है। ([1]मोक्षमार्ग प्रकाशक, (देहली) पृ. ३३५)॥२॥

दूसरी गाथा।

अंतर चतुर्दस भेद बाहिर, संग दसधा तैं टलैं;
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं।
जग-सुहितकर सब अहितकर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं;
भ्रमरोग-हर जिनके वचन-मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं॥२॥

---

१ ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान;
प्रतिष्ठापना जुटक्रिया, पाँचों समिति विधान।

देखो ! भाषा समिति। भाषा समिति की व्याख्या। अलौकिक बात है। क्या कहते हैं ? देखो !

अन्वयार्थ :- शब्दार्थ :- '(वीतरागी) संत दिगम्बर जैन मुनि (चतुर्दश भेद) चौदह प्रकार के अन्तरंग तथा (दसधा) दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह से रहित होते हैं।' उनको वस्त्र-पात्र होते नहीं, नग्न दशा होती है, अन्तर में आनन्द का भान होता है। अतीन्द्रिय तीन कषाय के अभाव से अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं। बाहर में नग्नदशा, वस्त्र-पात्र का भी त्याग है।

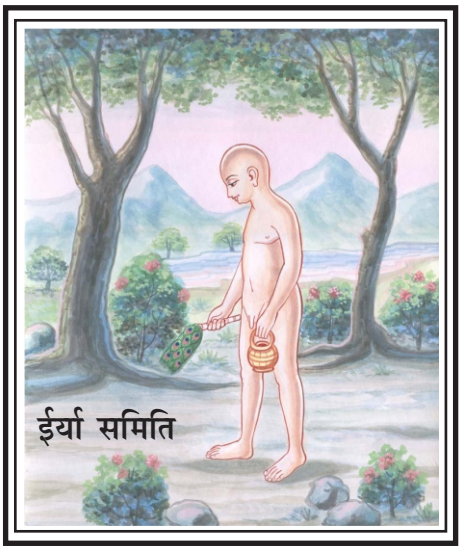
ईर्या समिति

'प्रमाद-असावधानी छोड़कर...' अब ईर्यासमिति कहते हैं न ? पहले पंच महाव्रत की व्याख्या की। ईर्या समिति। **'प्रमाद-असावधानी छोड़कर चार हाथ जमीन देखकर ईर्यासमिति से चलते हैं...'** चार हाथ प्रमाण देखकर कोई प्राणी को दु:ख न हो, ऐसे आत्मा के आनन्दपूर्वक प्रमादरहित चलते हैं। उसका नाम ईर्यासमिति है।

अब भाषासमिति में विशेष अलौकिक बात है। देखो ! **'जिन मुनिराजों के मुखरूपी चन्द्र से...'** दिगम्बर संत आत्मज्ञानी आनन्द में लीने होनेवाले 'कुन्दकुन्दाचार्य', 'अमृतचन्द्राचार्य' महा दिगम्बर मुनि हुए। देखो ! कौन लाया है यह ? 'कलकत्ता' ? अच्छा। हजार वर्ष पहले संवत ४९ में भरतक्षेत्र में दिगम्बर मुनि हुए। 'कुन्दकुन्दाचार्य' टाड़पत्र पर लिखते हैं। 'समयसार', 'प्रवचनसार' आदि लिखते हैं। भगवान के पास गये थे। महाविदेहक्षेत्र में 'सीमंधर' भगवान बिराजते हैं, वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से (आकर) शास्त्र बनाते हैं, देखो अन्दर ! आप को 'कलकत्ता' ले जाना है ? कहो, समझ में आता है ?

मुनि तो अन्तर में आनन्द (में रहते हैं)। श्रावक भी उसको कहते हैं कि, जिसको अन्तर में शुद्धस्वभाव का अन्तर अनुभव होकर सम्यग्दर्शन हुआ हो और उसको देश-आंशिक त्याग

होता है। मुनि तो विशेष आत्मा के आनन्द में उग्र होते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव और सर्व विरति का भान उनको होता है। पंच महाव्रत की व्याख्या तो की। ईर्यासमिति कही, अब भाषासमिति में अलौकिक बात कहते हैं। सारे जैनदर्शन का सार भाषासमिति में समा देते हैं। समझ में आया ? कैसा है भाव ? भाषासमिति कैसे बोले तो बोले ?

'**जिन मुनिराजों के मुखरूप चन्द्र से...**' मानो अमृत झरता हो। कैसा अमृत ? भाषासमिति में कैसी प्ररूपणा होती है ? '**जगत का सच्चा हित करनेवाला...**' वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो मार्ग कहा है, वह मार्ग मुनि, भाषासमिति में कहते हैं। कैसा ? '**जगत का सच्चा हित...**' '**सुहितकर**' शब्द पड़ा है न ? '**जग सुहितकर**' सुहितकर का अर्थ मोक्षमार्ग अथवा मोक्ष का मार्ग अथवा मोक्ष। सुहित-जगत को ऐसा कहते हैं कि, हे प्राणियों ! तुम्हारा पूर्ण आनन्दरूपी मोक्ष, वह मोक्ष का मार्ग तुम प्रगट करो। वीतरागी दशा और वीतरागी दशा से प्राप्त पूर्णानन्द की प्राप्ति करो। ऐसा सुहितकर मार्ग मुनिओं वाणी में कहते हैं। कहो ! आहा..हा... ! भाषा देखो !

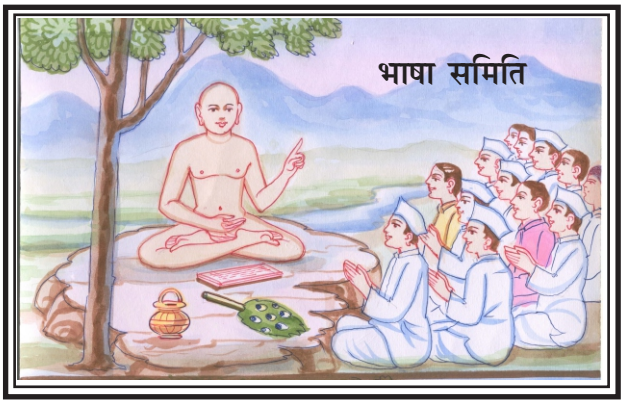

'**जगत का सच्चा हित करनेवाला...**' हित.. परमहित। अपना आत्मा शरीर, कर्म से रहित अन्दर है और शुभ-अशुभभाव, विकार से भी रहित है, ऐसे अपने आत्मा में दृष्टि लगाओ, ज्ञान करो और स्वरूप में लीन हो। मुनिओं वीतरागी भाषा में, समिति में हितकर उपदेश, उनके मुखरूपी चन्द्रमामें से सुहितकर-चन्द्र का अमृत झरता है। कहो, समझ में आया ? सुहितकर-सच्चा हित करनेवाला। '**तथा (सब अहितकर)...**' नास्ति कहते हैं। '**अहित का नाश करनेवाला...**' मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्या राग-द्वेष का भाव, जो अहितकर है, (उसका नाश करनेवाला)।

मुमुक्षु :- गरीबी।

उत्तर :- गरीबी अहितकर नहीं है। समझ में आया ? क्या ? गरीब होना अहितकर नहीं है, वैसे तवंगर होना हितकर नहीं है। क्या कहते हैं ? पुस्तक है या नहीं ? जगत में कोई गरीब नहीं है। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। तवंगर भी कोई नहीं है। भाई !

मुमुक्षु :- तवंगर भी नहीं ?

उत्तर :- ना, ना। तवंगर नहीं है। पर्याय में रांक-भिखारी है। जो कोई पुण्य-पाप की इच्छा करते हैं और पुण्य के फल की इच्छा करते हैं, वह रांक है, भिखारी है। वह आया था, कल आया था या नहीं ? दीन.. दीन। 'दीन' शब्द कल आया था। उस दीनता को नाश करनेवाला उपदेश मुनि देते हैं। मुनि के मुखमें से, दिगम्बर मुनि संत आत्मज्ञानी-ध्यानी, जिनको अन्तर (में) छठ्ठा-सातवां गुणस्थान प्रगट हुआ है, जो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो मार्ग कहा, ऐसा सुहितकर मार्ग का उपदेश देते हैं। भैया ! तेरा हित, अपना शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा, उसकी अन्तरदृष्टि करो, आत्मा का ज्ञान करो, आत्मा में लीन हो तो सुहित-पूर्ण मुक्ति तुझे होगी। ऐसा उपदेश मुनिराज भाषासमिति में ऐसी बात करते हैं। पाप करना, हिंसा करनी, झूठ बोलना, तेरी अवस्था ठीक होगी, लड़का होगा ऐसी बात मुनि के मुखमें से कभी होती नहीं। समझ में आया ?

अहितकर-अहित को करनेवाली। मिथ्याश्रद्धा आदि.. विस्तार तो बाद में करेंगे, पहले सामान्य बात करते हैं। अहित का करनेवाला-आत्मा के शुद्ध स्वभाव को छोड़कर, विकार को अपना मानना, परचीज को अपना मानना, वह मिथ्यात्वरूपी भाव महाअहितकर है। आ..हा.. ! अहितकर है, आत्मा को नुकसान करनेवाला है। उसको नाश करनेवाली भाषा कहते हैं। रखनेवाली नहीं (कहते)। आहा..हा... ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जैसा मार्ग कहते हैं, ऐसा मार्ग उसके मुखमें से निकलना चाहिए। उसे भाषासमिति कहते हैं। अब उसका विस्तार करते हैं।

कैसे कहते हैं ? कि, '**सुनने में प्रिय लगे...**' श्रोता को आत्मा की बात प्रिय लगे। ऐसा आनन्दस्वरूप भगवान, तेरा स्वरूप तो परमानन्द है न ! समझ में आया ? भगवान ! तू तो परमानन्द है न ! तेरे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है न ! तु तो शान्तरस का तो भगवान है

न ! ऐसी प्रिय भाषा जिन के मुखमें से भाषासमिति में आती है। समझ में आया ? '**सुनने में प्रिय लगे ऐसा...**'

'**(सब संशय) समस्त संशयों को...**' नाश करनेवाला। क्या मार्ग होगा ? कोई पुण्य-पाप, पुण्य से धर्म होगा ? पवित्रता से धर्म होगा ? या निमित्त से लाभ होगा ? या स्वभाव से लाभ होगा ?-ऐसा संशय जो होता है, इस संशय को नाश करनेवाली वाणी निकलती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- वाणी का प्रताप तो है न ?

उत्तर :- वाणी का प्रताप नहीं है, उसके भाव की योग्यता है कि वाणी में ऐसा निमित्त होता है, तब उसे समझ में आता है, तब संशय टालते हैं, ऐसा कहने में आता है।

ममुक्षु :- इसमें कहा है न ?

उत्तर :- कहा है न। नाश करनेवाली वाणी। जो समझता है, उसे संशय टालने में निमित्त होती है तो नाश करनेवाली वाणी कहने में आता है। ओ..हो... ! भगवान ! सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव कहते हैं, ऐसा मुनिराज अन्दर में से एक ही बात कहते हैं कि, भैया ! सर्व वही कहते हैं, भैया ! तेरा सर्व परमेश्वर त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में सीमंधर प्रभु बिराजते हैं। समझ में आया ? उनके पास जाकर 'कुन्दकुन्दचार्यदेव' लाये, सब बात ऐसी ही कहते थे। ऐसी परम्परा (में) संतो ऐसी बात करते हैं।

संशय दूर करनेवाली। उसको संशय न रहे। क्या होगा ? मैं परद्रव्य का कर सकता हूँ या नहीं ? मैं परद्रव्य को सहायता करके भला-बूरा कर सकता हूँ ? और परद्रव्य मेरा कोई भला-बूरा कर सकता है या नहीं ? ऐसा संशय हो उसका छेद करते हैं कि, तुम परद्रव्य का कुछ कर सकते नहीं। परपदार्थ का कार्य तेरे अधिकार की बात नहीं और परपदार्थ से तेरे में कुछ होता है-ऐसा तुम भी नहीं। समझ में आया ? सब संशयों को दूर करनेवाली भाषा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है, ऐसा संशय रहे-ऐसी भाषा वीतराग संतों की होती नहीं। उपदेश ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

तेरा आत्मा वीतराग आनन्दस्वभाव से भरा है, उसकी तुम अन्तर वीतराग श्रद्धा, ज्ञान,

शान्ति करो तो तेरा कल्याण होगा और बीच में राग आता है, परन्तु उस राग से कल्याण नहीं होगा। राग से कल्याण होगा और स्वभाव के आश्रय से कल्याण होगा, ऐसे संशय को नाश करनेवाली वाणी निकलती है। (राग से कल्याण होगा)-ऐसा है नहीं। समझ में आया ? भाषा कैसी रखी है ! 'दौलतरामजी', 'दौलतरामजी' पण्डित। २०० वर्ष हुए न ? कितने हुए ? मालूम नहीं ? १३० ? अभी हुए ? ठीक ! भाषा तो बहुत अच्छी लिखी है। 'छहढाला' जैन पाठशाला में पढ़ाते हैं। बहुतों को मुख में कंठस्थ भी होती है। ऐसा-ऐसा लिखते हैं। अन्तिम गाथा में है। वैशाख सुद ३। बराबर है, अन्तिम गाथा में है। अन्त में है। बराबर है। १८९१ वैशाख सुद ३। (संवत) १८९१ में लिखी है। १३१ वर्ष लगभग हो गये। परन्तु भाषा कितनी आसान, सरल हिन्दी।

वीतराग का मार्ग कैसा है ? ऐसा सुहितकर, अहित का नाशकर, संशय का टालनेवाला और भ्रमरोग को मिटानेवाला। समझ में आया ? मुनि ऐसी वाणी कहते हैं। ऐसी वाणी से विपरीत मुनि (वाणी) कह सकते नहीं। देखो ! '**सर्व अहित का नाश करनेवाला, सुनने में प्रिय समस्त संशयों...**' '**सब संशय**' शब्द पड़ा है न ? कोई संशय रहे नहीं। भगवान आत्मा तेरी वीतरागी चीज 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'। सिद्ध समान आत्मा है। अन्दर स्वरूप की दृष्टि करो, उससे ही कल्याण होगा। दूसरे राग से और संयोग से तेरा कल्याण नहीं होगा। सब संशय को नाश करनेवाली मुनि भाषासमिति से अमृत झरता है। आहा..हा... ! देखो ! कितना डाला है ?

संशयनाशक '**और (भ्रम रोगहर) मिथ्यात्वरूपी रोग को हरनेवाला...**' लो ! मुनिओं की भाषा तो भ्रमणा का नााश करनेवाली होती है। मिथ्या भ्रमणा-विपरीत अभिनिवेश। वहाँ लिखा है, देखो ! विपरीत अभिनिवेश जो है कि, राग से मेरा कल्याण होता है, संयोग से मुझे लाभ होता है, ऐसी विपरीत-मिथ्या अभिप्राय, ऐसे विपरीत मिथ्यात्व को नाश करनेवाली मुनियों की वाणी होती है। पहले तो मिथ्यात्व का रोग बड़ा (है)। देखो ! '**(भ्रम रोगहर)**' भाई ! कौन-सा रोग है ? उसमें लिखा है, देखो ! भ्रमरोग।

ममुक्षु :- ये सहन नहीं होता।

उत्तर :- सहन नहीं होता। लो, ठीक। अन्दर से वह आया। सहन नहीं होता है। बैठे हो,

कुछ है ? बिच्छुने काटा है ? क्या है ? खा-पीकर लठ होकर आते हैं। क्या है लेकिन ? मुफ्त की ममता.. ममता... ममता.. आहा..हा... ! मार डाला। भ्रमणा ने मार डाला, ऐसा कहते हैं। शरीर में रोग और उससे मुझे दु:ख होता है, भ्रमणा है। '**आत्मभ्रांति सम रोग नहीं, आत्मभ्रांति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान, गुरु-आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।**' भाषा बोले, अन्दर में उसे बैठे नहीं। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु :- बहुत पढ़ा था।

उत्तर :- बहुत पढ़ा था, लेकिन एक बात भी कहाँ अन्तर में उतारी है ? 'आत्मभ्रांति सम रोग नहीं'। देखो ! यहाँ 'दौलतरामजी' कहते हैं न ? '**(भ्रम रोगहर)**' मुनिओं की वाणी, वीतराग की वाणी, शास्त्र की वाणी, ऐसी होती है कि, भ्रमरूपी रोग को नाश करनेवाली है। भ्रमणा अनादि से क्या लगी है ? आत्मभ्रांति।

मुमुक्षु :- पागल हो गया है..

उत्तर :- पागल हो गया है। हिन्दी भाषा पागल है। समझ में आया ?

अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप छोड़कर राग में आनन्द है, शरीर में आनन्द है, ऐसे मानना (वह) भ्रमणा का रोग लगा है। उसको मिथ्यात्वरूपी भ्रम रोग लगा है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! 'आत्मभ्रांति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान।' जाननेवाले ज्ञानी वैद्य हैं। 'औषध विचार ध्यान, गुरु-आज्ञान सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।' विचार कर, विचार कर, भाई ! एक बात भी बैठी नहीं।

आत्मा सुखी तो सुखी सर्व बाते, ऐसे है। आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति। कहा नहीं ? आया नहीं ? 'चिन्मुरति की धारी...' आता है या नहीं स्तवन में ? 'बाहिर नरककृत दु:ख भोगत, अन्तर सुख की गटागटी।' नारकी जीव में भी सम्यग्दर्शन-आत्मा का भान है; बाहर में दु:ख है और अन्दर में आनन्द है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? 'चिन्मुरति की...' आता है न ? 'रीति लगत मुझे अटपटी।' पहले सेठ आये थे न ? तो पहले वह गाया था। लेकिन मालूम नहीं था कि क्या है। नरक में नारकी को बाह्य दु:ख है, परन्तु सम्यग्दृष्टि है तो उसे आत्मा का भान है।

जैसे 'श्रेणिक' राजा। 'श्रेणिक' राजा अभी है न ? नरक में है या नहीं ? पहली नरक में है। पहली नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है। समझ में आया ?

चिन्मूरत दृगधारी की मोहि, रीति लगति है अटापटी;
बाहिर नारकिकृत दुःख भोगे, अन्तर सुखरस गटागटी।

आप को धूल में भी रोग नहीं है। उसको (-नारकी तो) शरीर में इतने रोग हैं, हजारों बिच्छु काटते हैं, बिच्छा का डंक। नहीं, 'बाहिर नारकि-कृत दुःख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी।' भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन में भ्रमणा का नाशकर जो सम्यग्दर्शन प्रगट किया (तो) आत्मा का आनन्द आया। अन्तर में आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का भान हुआ, उसका नाम सम्यग्दर्शन (है)। ऐसे सम्यग्दर्शन की बात भ्रमणा टालकर मुनियों दूसरे को समझाते हैं। समझ में आया ? देखो ! कितना लिखा है ! समझ में आया ? कौन है ? ये भी 'दौलत' है, लो ! भले दूसरे 'दौलत' (हो)। 'अन्तर सुखरस गटागटी'। समझे ?

सदन-निवासी तदपि उदासी, तातें आस्रव छटाछटी;
जे भवहेतु अबुध के ते तस, करत बन्ध की झटाझटी।
संयम धरि न सके पै संयम, धारन की उर चटाचटी,
तास सुयश गुन की 'दौलत' के, लगी रहे नित रटारटी।

'दौलतरामजी' कहते हैं, दूसरे 'दौलतरामजी' हैं। बहुत अच्छा (लिखा है)। नरक में इतने-इतने दुःख हैं, तो मुनियों, यहाँ मनुष्य को ऐसा उपदेश देते हैं कि, अरे..! भैया ! तुम्हारे भाव में शुभ-अशुभभाव होते हैं, वह भी दुःख है, आत्मा में आनन्द है। पर में सुख मानना भ्रम है, मिथ्यात्व है, मिथ्यादर्शन-विपरीत शल्य है। आहा..हा...! कहो, कैसा उपदेश देते हैं ? देखो ! मुनिराज का उपदेश होता है। दुनिया को मस्का लगाये और अनुकूल (कहे), ऐसा नहीं। आहा..हा...!

'**समस्त संशयों का नाशक...**' संशय, विपरीत और अनध्यवसाय तीनों का हो गया। समझ में आया ? '**और मिथ्यात्वरूपी रोग को हरनेवाला वचनरूपी अमृत झरता है।**'

भाषासमिति में जैनदर्शन की मूल भाषा समा दी है, लो ! समझ में आया ? संतों की भाषा होती है तो ऐसी होती है। भगवान ! तेरा स्वरूप हमारे जैसा है। तुमको राग होता है, वह दःख है। शरीर, वाणी, पर तो जड़ है। उससे भिन्न हो। भ्रम टाल दे। मैं अल्पज्ञ हूँ, रागी हूँ (ऐसा) भ्रम टाल दे। मैं अल्पज्ञ हूँ, मैं रागी हूँ, मैं कर्मसम्बन्ध शरीरवाला हूँ, इतना हूँ-ऐसा भ्रम छोड़ दे। तुम सर्वज्ञ पूर्णआनन्दमय हो।

मुमुक्षु :- भ्रमणा हुई है।

उत्तर :- किसकी बात चलती है ? भूरी चड़ी है, भूरी। भ्रमणा की अज्ञान की। समझ में आया ?

कहते हैं, '**मिथ्यात्वरूपी रोग...**' देखो ! भाषा की है, '**(भ्रम रोगहर)**' मिथ्यात्व का नाश हो ऐसी भाषा मुनि के मुखमें से आती है। समझ में आया ? देव-देवी मानो तो ऐसा होता है, पैसा मिलेगा, ऐसा होता है, ऐसा होता है-ऐसी भाषा मुनि के मुख से नहीं आती। आहा..हा..! भ्रमरोग, संशय और अनध्यवसाय। क्या होगा, कुछ मालूम नहीं पडता ? उन सब को नाश करनेवाली। भालीभाँति आत्मा समझ में आ सकता है। आत्मा किसी को पूछने जाने पड़ता नहीं। ऐसी नि:संशय बात मुनिओं के मुखमें से निकलीत है। भैया ! चैतन्यमूर्ति भिन्न प्रभु देह से भिन्न है, कर्म से भिन्न है, पुण्य-पाप के राग से भिन्न है, पूर्णानन्दसे भरा है-ऐसी प्रतीत कर, श्रद्धा कर (तो) सम्यग्दर्शन होगा। मिथ्यात्व का नाश करनेवाली. संशय का नाश करनेवाली भाषा मुनियों के मुख से निकलती है।

देखो ! पहले यह कहा-मिथ्यात्व का नाश करनेवाली भाषा निकलती है। भ्रमरोग-संशय की ही पहली बात की। बाद में राग को कम करने की बाद में (करेंगे)। आया या नहीं उसमें ? यहाँ तो संशय, भ्रमरोग मिटाने और सुहित और अहित-सुहित को करनेवाली और अहित का नाश करनेवाली (है)। उसमें रागादि आ गया। रागादि भाव हैं, अहितकर हैं, आत्मा का स्वभावभाव हितकर है। वह बात समुच्चय आ गई। अन्त में मुख्यरूप से यहाँ जोर दिया। संशय और भ्रमणा को नाश करनेवाले वचन मुनि के मुखमें से निकलते हैं। ऐसा उपदेश श्रोता सुनते हैं, श्रोता के ख्याल में यह बात आनी चाहिए। भ्रमणा, पुण्य-पाप में सुख, पर में सुख सब भ्रम है,

मिथ्यात्व है। भगवान आत्मा में सुख है और धर्म है। धर्म में भी तेरे आत्मा में है। बाहर धर्म है नहीं ऐसी दृष्टि करो, ऐसा ज्ञान करो, ऐसी लीनता करो, ऐसे मिथ्यात्व का नाश का उपदेश देते हैं। ईर्या, भाषा और पंच महाव्रत-तीन की बात कही।

भावार्थ :- 'वीतरागी मुनि चौदह प्रकार के अन्तरंग और दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह से रहीते होते हैं, इसलिए उनको (५) परिग्रहत्याग-महाव्रत होता है। दिन में सावधानीपूर्वक चार हाथ आगे की भूमि देखकर चलने का विकल्प उठा वह (१) ईर्या समिति है। तथा जिसप्रकार चन्द्र से अमृत झरता है, उसीप्रकार मुनि के मुखचन्द्र के जगत का हित करनेवाले, सर्व अहित का नाश करनेवाला, सुनने में सुखकर, सर्व प्रकार की शंकाओं को दूर करनेवाले और मिथ्यात्व (विपरीतता या सन्देह) रूपी रोग का नाश करनेवाले ऐसे अमृत-वचन निकलते हैं। इसप्रकार समितिरूप बोलने का विकल्प मुनि को उठता है वह (२) भाषा समिति है। ' दूसरी समिति है। ऐसा विकल्प उठता है। समझ में आया ?

प्रश्न :- सच्ची समिति किसे कहते हैं ?

उत्तर :- परजीवों की रक्षा के हेतु यत्नाचार प्रवृत्ति को अज्ञानी जीव समिति मानते हैं,...' ऐसा नहीं है। '**किन्तु हिंसा के परिणामों से तो पापबन्ध होता है। यदि रक्षा के परिणामों से संवर कहोगे तो पुण्यबन्ध का कारण क्या सिद्ध होगा ?**' पर की रक्षा-नहीं मारने का भाव तो पुण्य है, समिति नहीं। पर को नहीं मारने का भाव, पुण्य है, मारने का भाव पाप है, समिति नहीं, समिति दूसरी चीज है। अन्तर में शुभाशुभराग से रहित शुद्ध अन्दर परिणति प्रगट करना उसका नाम यथार्थ समिति है। समझ में आया ?

'**तथा मुनि एषणा समिति में दोष को टालते हैं...**''टोडरमलजी''मोक्षमार्ग प्रकाशक' में (कहते हैं) उसका आधार दिया है। '**मुनि, ऐषणासमिति मे दोष को टालते हैं; वहाँ रक्षा का प्रयोजन नहीं है,...**' पर की रक्षा का प्रयोजन नहीं है। यहाँ विवाद करे। पर की रक्षा का प्रयोजन नहीं, आत्मा पर की रक्षा कर सकता नहीं। '**रक्षा के हेतु ही समिति नहीं है। तो फिर समिति किस प्रकार होती है ? मुनि को किंचित् राग होने पर...**' यह 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में 'टोडरमलजी' का लिखा हुआ है। '**समिति किसप्रकार होती है ?**' तो कहते हैं, थोड़े राग में

गमनादि क्रिया होती है। '**वहाँ उन क्रियाओं में अति आसक्ति के अभआव से प्रमादरूप प्रवृत्ति नहीं होती, तथा दूसरे जीवों को दु:खी करके अपना गमनादि प्रयोजन सिद्ध नहीं करते, इसलिये उनसे स्वयं दया का पालन होता है; इसप्रकार सच्ची समिति है।**' 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' मिं लिखा है।

मुमुक्षु :- दया..

उत्तर :- दया अर्थात् र जीव को मारने का अभिप्राय नहीं है। सहज ही ऐसा हो जाता है।

एषणा, आदान-निक्षेपण और प्रतिष्ठापनसमिति

छयालीस दोष विना सुकुल, श्रावकतनैं घर अशनको;
लैं तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन-पोषते तजि रसनको।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं;
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल-मूत्र श्लेष्म परिहरैं ।।३।।

अन्वयार्थ :- (वीतरागी मुनि) (सुकुल) उत्तम कुलवाले (श्रावकतनैं) श्रावक के घर और (रसनको) छहों रस अथवा एक-दो रसों को (तजि) छोड़कर (तन) शरीर को (नहि पोषते) पुष्ट न करते हुए-मात्र (तप) तप की बढ़ावन (हेतु) वृद्धि करने के हेतु से (आहार के) (छयालीस) छियालीस (दोष बिना) दोषों को दूर करके (आशनको) भोजन को (लै) ग्रहण करते हैं [१]। (शुचि) पवित्रता के (उपकरण) साधन कमण्डल को, (ज्ञान) ज्ञान के (उपकरण) साधन शास्त्र को, तथा (संयम) संयम के (उपकरण) साधन पींछी को (लखिकै) देखकर (गहैं) ग्रहण करते हैं (और) (लखिकैं) देखकर (धरैं) रखते हैं (और) (मूत्र) पेशाब (श्लेष्म) श्लेष्म (तन-मल) शरीर के मैल को (निर्जन्तु) जीवरहित (थान) स्थान (विलोकि) देखकर

१. आहारके दोषोंका विशेष वर्णन 'अनगार धर्मामृत' तथा 'मूलाचार' आदि शास्त्रोंमें देखें। उन दोषोंको टालनेके हेतु दिगम्बर साधुओंकों कभी महीनों तक भोजन न मिले तथापि मुनि किंचित् खेद नहीं करते; अनासक्त और निर्मोह-रहित सहज होते है। (कायर मनुष्यों-अज्ञानियोंको ऐसा मुनिव्रत कष्टदायक प्रतीत होता है, ज्ञानीको वह सुखमय लगता है।)

(परिहरैं) त्यागते हैं।

भावार्थ :- वीतरागी जैन मुनि-साधु उत्तम कुलवाले श्रावक के घर, आहार के छियालीस दोषों को टालकर तथा अमुक रसों का त्याग करके (अथवा स्वाद का राग न करके) शरीर को पुष्ट करने का अभिप्राय न रखकर, मात्र तप की वृद्धि करने के लिये आहार ग्रहण करते हैं; इसलिये उनको (३) एषणासमिति होती है। पवित्रता के साधन कमण्डल को, ज्ञान के साधन शास्त्र को और संयम के साधन पींछी को-जीवों की विराधना बचाने के हेतु-देखभा कर रखते हैं तथा उठाते हैं; इसलिये उनको (४) आदान-निक्षेपण समिति होती है। मल-मूत्र-कफ आदि शरीर के मैल की जीवरहित स्थान देखकर त्यागते हैं, इसलिये उनको (५) व्युत्सर्ग अर्थात् प्रतिष्ठापन समिति होती है ॥३॥

अब '**ऐषणा, आदान-निक्षेपण और प्रतिष्ठापनसमिति...**' तीन की व्याख्या है। पाँच महाव्रत की व्याख्या हो गई, दो समिति की व्याख्या हो गई-ईर्या और भाषा (समिति)। (इस गाथा में) तीन समिति की व्याख्या (करेंगे)। इस छठवें अध्याय में मुनि की व्याख्या में भी कैसा उपदेश होता है, वह बात भी उसमें आ गई, बहुत अच्छी बात आ गई।

छयालीस दोष विना सुकुल, श्रावकतनैं घर अशनको;
लैं तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन-पोषते तजि रसनको।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं;
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल-मूत्र श्लेष्म परिहरैं ॥३॥

देखो ! वीतरागी संत, अन्तर में आनन्द का भान है, ऐसी ऐषणासमिति (पालते) हैं। क्या (कहते हैं) ? '**(वीतरागी मुनि) उत्तम कुलवाले श्रावक के घर...**' देखो ! साधारण घर में जाते नहीं। उत्तम कुल, श्रावक धर्मात्मा हो, निर्दोष श्रद्धा-ज्ञान हो, उसे मार्ग की खबर हो, उसके घर से आहार लेते हैं-ऐसा कहते हैं। देखो ! पाठ में है न ? '**श्रावकतनें घर अशनको।**' उसे मालूम होता है, नहीं मालूम पड़े ऐसा है ? अभी तो कुछएक भंगी के घर, हरिजन के घर आहार लेते हैं न ? ऐसा नहीं होता। (एक साधु है न) ? मुहपत्ती बान्धे और हरिजन के वहाँ आहार ले।

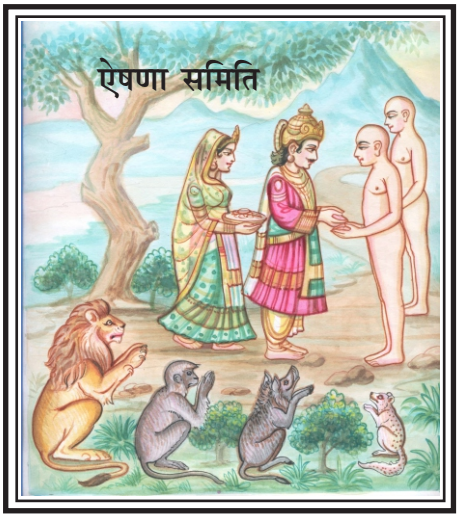

व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। दिगम्बर मुनि संत आत्मज्ञानी-ध्यानी अपने शरीर के निर्वाह के लिये श्रावक के घर, उत्तम कुल हो वहाँ जाये। सुकुल है न ? सुकुल और श्रावक का घर, ऐसे लिया है न ? दोनों बात ली है। समझे न ? सुकुल और श्रावक के घर 'अशनको'।

'**छहों रस अथवा एक-दो रसों को छोड़कर शरीर को पुष्ट न करते हुए-मात्र तप की वृद्धि करने के हेतु से...**' तप अर्थआत् मुनपिना। '**छियालीस दोषों को दूर करके...**' उनके लिये चौका बनाया हो तो वे लेते नहीं। क्योंकि उनके लिये बनाया हो तो वह उद्देशिक है। मुनि भावलिंगी संत आत्मज्ञानी अन्तर में आनन्द में मस्त हैं, शरीर को निभाने के लिये ऐसा थोड़ा विकल्प आता है तो ऐसा निर्दोष आहार लेते हैं। (नीचे फूटनोट में लिखा है), 'अनगार धर्मामृत' (ग्रन्थ से) समझ लेना।

'**पवित्रता के साधन कमंडल को,...**' एक कमंडल ही मुनि को होता है। '**ज्ञान के साधन शास्त्र को तथा संयम के साधन पींछी को देखकर...**' देखकर। देखकर ले और देखकर छोड़े।

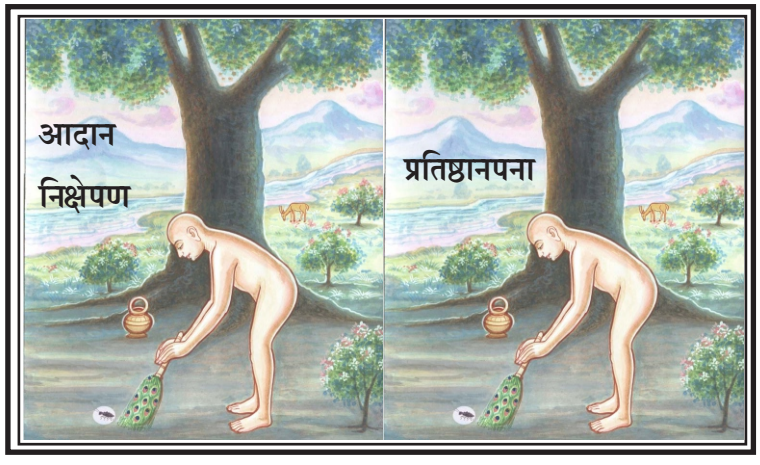

'**देखकर रखते हैं। पेशाब, श्लेष्म...**' नाक की लिट आदि हो न ? जीव-जंतु ना हो, न मरे वहाँ छोड़ते हैं। '**शरीर के मैल को जीवरहित स्थान देखकर त्यागते हैं।**' जहाँ कोई प्राणी कि हिंसा न हो, वहाँ छोड़ते हैं। उसमें सब अर्थ आ गया है। भावार्थ आ गया।

मुनियों की तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रियों पर विजय

सम्यक् प्रकार निरोध मन वच काय, आतम ध्यावते;
तिन सुथिरमुद्रा देखि मृगगण उपल खाज खुजावते।
रसरूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने;
तिन में न राग विरोध पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने ।।४।।

अन्वयार्थ :- (वीतरागी मुनि) (मन वच काय) मन-वचन-काया का (सम्यक् प्रकार) भलीभाँति-बराबर (निरोध) निरोध करके, जब (आतम) अपने आत्मा का (ध्यावते) ध्यान करते हैं तब (तिन) उन मुनियों की (सुरि) सुस्थिर-शांत (मुद्रा) मुद्रा (देखी) देखकर, उन्हें (उपल) पत्थर समझकर (मृगगण) हिरन अथवा चौपाये प्राणियों के समूह (खाज) अपनी खाज-खुजली को (खुजावते) खुजाते हैं। (जो) (शुभ) प्रिय और (असुहावने) अप्रिय (पाँच इन्द्रियों सम्बन्धी) (रस) पाँच रस, (रूप) पाँच वर्ण (गंध) दो गंध, (फरस) आठ प्रकार के स्पर्श (अरु) और (शब्द) शब्द-तिनमें उन सब में (राग-विरोध) राग या द्वेष (न) मुनि को नहीं होते, (इसलिये वे मुनि) (पंचेन्द्रिय जयन) पाँच इन्द्रियों को जीतनेवाला अर्थात् जितेन्द्रिय (पद) पद (पावने) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ :- इस गाथा में निश्चय गुप्ति का तथा भावलिंगी मुनि के अट्ठाईस मूलगुणों में पाँच इन्द्रियों के वजिय के स्वरूप का वर्णन करते हैं।

भावलिंगी मुनि जब उग्र पुरुषार्थ द्वारा शुद्धोपयोगरूप परिणमित होकर निर्विकल्परूप में स्वरूप में गुप्त होते हैं-वह निश्चयगुप्ति है। उस समय मन-वचन-काय की क्रिया स्वयं रुक जाती है। उनकी शान्त और अचल मुद्रा देखकर, उनके शरीर को पत्थर समझकर मृगों के *झुण्ड (पशु) खाज (खुजली) खुजाते हैं, तथापि वे मुनि अपने ध्यान में निश्चल रहते हैं, उन

* इस सम्बन्ध में सुकुमाल मुनि का दृष्टान्त :- जब वे ध्यान में लीन थे, उस समय एक सियालिनी और उसके दो बच्चे, उनका आधा पैर खा गये थे, किन्तु वे अपने ध्यान से किंचित् चलायमान नहीं हुए। (संयोग से दु:ख होता ही नहीं, शरीरादि में ममत्व करे तो उस ममत्वभाव से ही दु:ख का अनुभव होता है-ऐसा समझना।)

भावलिंगी मुनियों को तीन गुप्तियाँ हैं।

प्रश्न :- गुप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर :- मन-वचन-काया की बाह्य चेष्टा मिटाना चाहे, पाप का चिंतवन न करे, मौन धारण करे, तथा गमनादि न करे, उसे अज्ञानी जीव गुप्ति मानते हैं। उस समय मन में तो भक्ति आदिरूप अनेक प्रकार के शुभरागादि विकल्प उठते हैं; इसलिये प्रवृत्ति में तो गुप्तिपना हो नहीं सकता। (सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आत्मा में लीनता द्वारा) वीतरागभाव होने पर जहाँ मन-वचन-काया की चेष्टा न हो, वही सच्ची गुप्ति हैं। (मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृ. २३५)

मुनि प्रिय (अनुकूल) पाँच इन्द्रियों के पाँच रस, पाँच रूप, दो गंध, आठ स्पर्श तथा शब्दरूप पाँच विषयों में राग नहीं करते और अप्रिय (प्रतिकूल) ऊपर कहे हुए पाँच विषयों में द्वेष नहीं करते। -इसप्रकार (५) पाँच इन्द्रियों को जीतने के कारण वे जितेन्द्रिय कहलता हैं ॥४॥

'मुनियों की तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रियों पर विजय।'

सम्यक् प्रकार निरोध मन वच काय, आत्म ध्यावते;
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण उपल खाज खुजावते।
रस रूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने;
तिन में न राग विरोध पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने ॥४॥

ओ..हो..हो..! '**वीतरागी मुनि)...**' मुनि को तीन कषाय का नाश होता है। महावैराग्य का पिण्ड है। अन्दर में चैतन्य की धून लगी हो। आत्मा का मोक्ष करने की एकमात्र धून अन्दर में लगी है। कमाने की धून लगती है लोगों को ? पागल होकर कमाने की (धून लगती है)। वैसे धर्मात्मा को अपने आत्मा की धून लगी है। पूर्णानन्द.. पूर्णानन्द.. पूर्णानन्द.. पूर्णानन्द कैसे प्राप्त करुँ ? ऐसी लीनता, तल्लीनता लगी है।

ऐसे मुनि '**मन-वचन-काया का भलीभाँति-बराबर निरोध करके...**' पाँच इन्द्रिय का

निरोध करते हैं। अट्ठाईस मूलगुण है न ? पाँच इन्द्रिय का निरोध। अतीन्द्रिय भगवान आत्मा में एकाकार होकर '**अपने आत्मा का ध्यान करते हैं...**' देखो ! समकिती श्रावक भी कभी-कभी अपने आत्मा का ध्यान करते हैं। मुनि तो बारम्बार ध्यान करते हैं। सम्यग्दृष्टि, श्रावक भी कभी-कभी उपयोग शुद्ध करते हैं, ध्यान। मुनि तो बारम्बार अन्तर में (जाते हैं)। क्षण में विकल्प, राग उठता है (कि) उपदेश करुं, सुनुं इतना या आहार-पानी। क्षण में सप्तम (गुणस्थान में आते हैं)। आत्मा आनन्दमय ध्यान में लीन हो जाते हैं। यहाँ शरीर में रहे.. बाहर की चलने की क्रिया होती है फिर थोड़ी देर में स्थिर हो जाये। आहा..हा... ! क्षण में सप्तम आ जाता है।

ऐसे मुनि '**अपने आत्मा का ध्यान करते हैं...**' देखो ! आत्मा का ध्यान करते हैं, भगवान का ध्यान करते हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहा। ए..ई.. ! पठा है न ? '**आतम ध्यावते**' मूल की बात है न ? '**आतम ध्यावते**'। भगवान का स्मरण करना तो विकल्प है, राग है। नवकार का स्मरण करना, वह भी शुभराग है, पुण्यबन्ध का कारण है-ऐसा कहते हैं, देखो ! मुनि (को) विकल्प है तो मन में स्मरण आदि आता है परन्तु जब अन्दर क्षण में (जाते हैं तो) आत्मा को ध्याते हैं। पाँच इन्द्रिय को रोधकर अखण्ड आनन्दकन्द का चिंतवन, शुद्ध स्वरूप सन्मुख होकर उपयोग लगाते हैं। उसका नाम आत्मध्यान (है)। उस ध्यान से बहुत कर्म की निर्जरा होती है।

कहते हैं, देखो ! चित्र दिये हैं। उसमें सब में दिये हैं, हाँ ! यह एक चित्र दिया है, देखो ! ध्यान में है न ? मृग आकर (अपने शरीर को) घिसता है। हिरन। '**उन मुनियों की सुस्थिर शान्त मुद्रा देखकर...**' ऐसे.. जाते हैं। शान्तरस में इतने लीन-लीन हैं, मानो पत्थर पडा हो !

मुमुक्षु :- ख्याल में आता ही होगा न ?

उत्तर :- नहीं, नहीं, ध्यान में ख्याल आता नहीं। बाहर विकल्प आ जाये तो ख्याल आ जाये। ध्यान लगाये तो ख्याल में भी नहीं आता। अतीन्द्रिय उपयोग लगा दिया, शुद्ध उपयोग (हुआ उस समय) समीप में ढोल पिटे तो मालूम नहीं पड़ता। ठीक ! उपयोग में जहाँ अन्दर में लीतना हुई, निर्विकल्प शुद्धउपयोग जम गया, (उस समय) नगाड़े बजे, बेंड बजे तो भी कुछ मालूम नहीं पड़ता। एक स्वज्ञेय में लीनता है न ? उसका नाम परमार्थ ध्यान कहते हैं। ख्याल आ जाये अलग बात है। बाहर आये विकल्प आया तो ख्याल आवे। उपयोग बाहर हो तो परिषह

का ख्याल न आवे ऐसा नहीं है। उपयोग अन्दर में से निकलकर आया।

'टोडरमलजी'ने लिया है, भाई ! आता है न ? 'टोडरमलजी'.. परीषह का ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं। ज्ञान होता है। देखो न ! मुनि ध्यान में हैं न ! उपयोग थोड़ा बाहर आये, विकल्प आये तो ख्याल आवे कि, कुछ है। ज्ञान होता है, लेकिन उस विकल्प के काल में। निर्विकल्प में तो ध्यान में हैं, कुछ मालूम नहीं। अकेला आत्मानन्द। आनन्द अनुभवता हूँ, इतना भेद भी नहीं है। आहा..हा..! ऐसी मुनि की दशा, पंच परमेष्ठी में उनको गिनने में आया है। उनको वीतरागी पंथ की बराबर खबर है और प्रगट दशा है।

'**मुनियों की सुस्थिर मुद्रा देखकर उन्हें पत्थर समझकर...**' देखो ! है न ? पत्थर। उपल.. उपल, '**(उपल)**' अर्थात् '**पत्थर समजकर हिरन अथवा चौपाये प्राणियों के...**' चार पैरवाले (प्राणी)। '**अपनी खाज-खुजली को खुजाते हैं।**' आहा..हा... ! इतना आनन्द में ध्यान लगाया है। आनन्द में, हाँ ! मात्र विकल्प नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द में ऐसी धुन लग गई कि, खबर नहीं। ऐसे बैठे हैं, हिरन आकर (समझता है कि) कोई पत्थर पड़ा है। आहा..हा... ! 'श्रीमद्जी' कहते हैं न ? 'अपूर्व अवसर' में नहीं आता ?

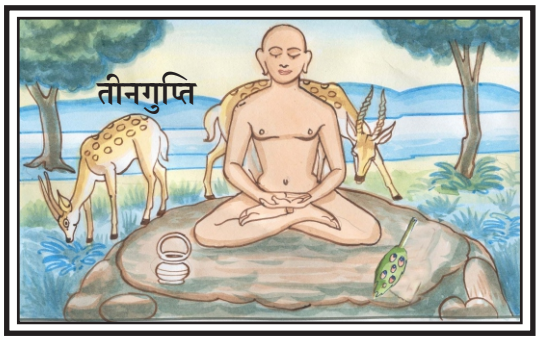

एकाकी विचरूँगा कब स्मशानमें
गिरि पर होगा वाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब।

देखो ! गृहस्थाश्रम में 'श्रीमद्जी' थे, 'अपूर्व अवसर' की गाथा लिखी। सात साल की उम्र में जातिस्मरण था। ३३ वर्ष में देह छूट गया। संवत १९५७। 'अपूर्व अवसर' बनाया। ऐसी भावना गृहस्थाश्रम में करते थे। समझ में आया ?

'**एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां।**' अरे..! मैं अकेला विचरुं और स्मशान में कब जाऊँ ? '**वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो;...**' पर्वत में वाघ और सिंह का जहाँ समागम

(हो)। '**अडोल आसन...**' आसन अडोल लगा देते हैं। देखो ! यहाँ लिखा है न, पत्थर की भाँति। '**अडोल आसन, ने...**' मात्र अडोल आसन नहीं। '**मनमां नहीं क्षोभता,...**' क्षोभ नहीं। सिंह की गर्जना सुने तो (भी) क्षोभ नहीं। आहा..हा...! ऐसी भावना (भाते हैं)। अपने पहले बारह भावना आ गई। ऐसी भावना गृहस्थी सम्यग्दृष्टि भी संसार में रहते हैं, (फिर भी) भावना करते हैं। पूरे दिन मात्र पाप की भावना करते हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

ऐसी भावना (भाते हैं कि), ओ..हो...! कब मैं शान्ति का मार्ग ग्रहण करके चारित्र(वंत) मुनि होउं और मैं जंगल में रहकर '**परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो।**' सिंह और वाघ आते हो (तो उन्हें देखकर ऐसा लगता है) हमारा शरीर हमें नहीं चाहिए, उसको चाहिए तो वह हमारा मित्र है। लो ! आहा..हा...! हमारे मित्र आते हैं। गृहस्थाश्रम में रहकर ऐसी भावना करते हैं। भावना न करे ? आहा..हा..! ऐसा अपूर्व अवसर, ऐसा अवसर कब प्रगट हो, ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव को बारम्बार आती है। यह तो मुनि की व्याख्या है। पत्थर पड़ा है-ऐसे हो। आहा..हा...!

'**अपनी खाज-खुजली को खुजाते हैं, प्रिय और (असुहावने) अप्रिय (पाँच इन्द्रियों सम्बन्धी) पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गंध, आठ प्रकारे स्पर्श और शब्द...**' अनुकूल-प्रतिकूल। सब में राग और द्वेष मुनि को नहीं होता। वीतराग.. वीतराग... वीतराग... '**पंच विषयमां राग-द्वेष विरहितता।**' आता है या नहीं ? '**पंच प्रमादे न मळे मननो क्षोभ जो।**' अन्तर में दृष्टि तो हुई है। स्वरूप में एकाग्रता (करने हेतु), पंचविषय से रहित होकर कब प्रमाद छोड़कर मैं मेरे स्वरूप में रहूँगा, ऐसी भावना गृहस्थाश्रम में तीर्थंकर भी करते थे। तीर्थंकर गृहस्थाश्रम में थे, जबतक मुनि नहीं हुए तो ऐसी भावना करते थे। मुनि होने के बाद तो बहुत भावना साक्षात् होती थी। ओ..हो..! कर्तव्य तो इस आत्मा का शुद्ध वीतरागभाव करना है। यह कर्तव्य है, दूसरा कोई कर्तव्य आत्मा का है नहीं। समझ में आया ? आहा..हा..! '**(इसलिये वे मुनि) (पंचेन्द्रिय जयन)) पाँच इन्द्रियों को जीतनेवाला अर्थात् जितेन्द्रियपद प्राप्त करते हैं ।**' अन्तर जितेन्द्रिय पद (प्राप्त करते हैं)।

भावार्थ :- 'इस गाथा में निश्चय गुप्ति का तथा भावलिंगी मुनि के अट्ठाईस मूलगुणों में पाँच इन्द्रियों की विजय के स्वरूप का वर्णन करते हैं। भावलिंगी मुनि...' जिसको आत्मा का

सम्यग्दर्शन, आनन्द का अनुभव हुआ है और स्वरूप में अन्तर वीतरागता प्रगट हुई है। '**उग्र पुरुषार्थ द्वारा शुद्धोपयोगरूप परिणमित होकर...**' उग्र पुरुषार्थ द्वारा। शुद्ध उपयोग में (रहते हैं)। जो पंच महाव्रतादि है, वह शुभराग उपयोग है। उससे हटकर अन्दर में शुद्ध उपयोग में उपयोग लगाकर '**निर्विकल्परूप से स्वरूप में गुप्त होते हैं...**' आहा..हा...! '**यह निश्चय गुप्ति है। उस समय मन-वचन-काया की क्रिया स्वयं रुक जाती है। उनकी शान्त और अचल मुद्रा देखकर, उनके शरीर को पत्थर समझकर मृगों के झुण्ड..**'

(फूटनोट में दिया है) '**इस सम्बन्ध में सुकुमाल मुनि का दृष्टान्त :-**' 'सुकुमाल' मुनि हैं न ? '**जब वे ध्यान में लीन थे, उस समय एक शियालिनी और उसके दो बच्चे उनका आधा पैरा खा गये थे,...**' देखो ! है न ? मुनि उपर ध्यान में बैठे हैं। शियालिनी और उसके दो बच्चे। ध्यान.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. दुःख नहीं, हाँ ! दुःख नहीं। उसका नाम अन्तर आनन्द (है)। अतीन्द्रिय आनन्द में इतने लीन हैं। जंगल में शियालिनी आई, आधा पैर खा गई।

'**किन्तु वे अपने ध्यान से किंचित् चलायमान नहीं हुए। (संयोग से दुःख होता नहीं...)**' लिखा है ? अन्दर लिखा है ? देखो ! मुफ्त में मूढ मानता है, ऐसा कहते हैं। मूढ मानता है। संयोग से दुःख है नहीं। शरीर में रोग, देखो ! '**शरीरादि में ममत्व करे तो उस ममत्वभाव से ही दुःख का अनुभव होता है-**' शरीर में रोग हो, निर्धनता हो, वह दुःख है ही नहीं।

मुमुक्षु :- पर हम मानते हैं न ?

उत्तर :- मूढ होकर मानता है कि, उसे दुःख है। मान्यता का दुःख है, क्या दुःख है ? देखो न ! संयोग से दुःख होता ही नहीं। शरीर प्रतिकूल हो, मिट्टी (है) उसमें क्या है ? यह तो मिट्टी जड़ है, धूल है। निर्धनपना बाहर है। स्त्री-कुटुम्ब न हो तो उसमें क्या ? वह दुःख है ? दुःख बिलकुल है ही नहीं। मूढ ऐसा मानता है कि, अरे..! मुझे ऐसा है। ऐसी उसकी मान्यता का उसको दुःख है। आहा..हा..! समझ में आया ? और अनुकूल संयोग में सुख नहीं। अनुकूल संयोग मिले, पाँच इन्द्रिय के विषय मिले, पाँच-पच्चीस लाख पैसा है, धूल है, सुन्दर शरीर है, वह कहाँ सुख है ? वह तो धूल है-मिट्टी है। मूढ अज्ञानी 'मुझे ठीक है'-ऐसे मिथ्याभ्रम में पर में अनुकूलता में सुख की कल्पना करता है। मूढ है, भ्रम में पड़ा है, उसे आत्मा की श्रद्धा की खबर नहीं। समझ में

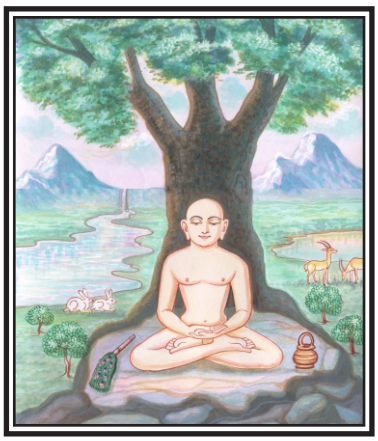

आया ? आहा..हा...! ऐसी बात कितनी बार आ जाती है। बहुत बार आ गई है न ?

देखो न ! मुनि जंगल में है। ध्यान में है, देखो ! सिंह बैठे हैं, उस ओर सिंह है। एक कोने में सिंह बैठा है। ऐसे शियाल की भाँति (बैठा है)। गीदड़: गीदड़:.. गीदड़ कहते हैं न ? गीदड़ की भाति सिंह। आत्मा को क्या ? संयोग-वियोग (बाहर में होते हैं)। आत्मा में आनन्द है। प्रतिकूल संयोग दु:ख नहीं। प्रतिकूल संयोग दु:ख है, यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि की है और अनुकूल संयोग सुख नहीं। मूढ मिथ्यादृष्टि मानता है कि अनुकूलता में मैं सुखी हूँ। दूसरा भी उसे कल्पे कि उसको बहुत अनुकूलता है, सुखी है। वह भी मूढ है, पागल है। समझ में आया ? भाई ! दूसरा सुखी कल्पे तो ? मूढ है। बाहर में सुख कहाँ से आया ?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप अनाकूल आनन्दकन्द आत्मा है, उसमें आनन्द है और उसकी विपरीत मान्यता करता है कि, ये मुझे सुख-दु:ख है। कल्पना करता है उसमें दु:ख है। बाहर में दु:ख है ? समझ में आया ? सम्यक्त्वी पाँच इन्द्रिय के विषय में सुख मानते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। सम्यगूष्टि पाँच इन्द्रिय के विषय में दिखते हैं, ९६ हजार स्त्री में दिखे, सुख मानते नहीं। आहा..हा...! राग आता है, उसे दु:ख मानता है, उपसर्ग मानते हैं। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव संसार के विषय में, इन्द्राणी (का) भोग इन्द्र को है और चक्रवर्ती को, तीर्थंकर को ९६ हजार पद्मणि जैसी स्त्रियाँ हैं। भोग में राग आता है (तो) महादु:ख मानते हैं, दु:ख मानते हैं। आहा..हा...! अरे..! यह उपसर्ग आया, उपसर्ग आया। मेरे आत्मा में आनन्द (है)। यह आसक्ति आयी (उसमें) रुचि में नहीं, सुखबुद्धि नहीं। सुखबुद्धि माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं। समझ में आया ? आहा..हा..!

(फूटनोट में) थोड़ा लिखा है, '**(ममत्वभाव से दु:ख का अनुभव होता है..)**' दु:ख का अनुभव कोई शरीर के रोग के कारण नहीं। ममता.. ममता.. ममता.. अन्दर होली जलाये। ये मेरा, ये मेरा, ये मेरा.. भगवान आत्मा अपना है, उसकी तो खबर नहीं। सच्चिदानन्द स्वरूप

अनादिअनन्त आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है। सिद्ध समान आत्मा है, लो ! भान नहीं। ममता का दुःख है। समझ में आया ?

'**मुनि अपने ध्यान में निश्चल रहते हैं। उन भावलिंगी मुनियों को तीन गुप्तियाँ है।**' बाद में गुप्ति की व्याख्या 'टोडरमलजी' (द्वारा लिखी है न) ? (वह कहते हैं)। '**मन-वचन-काया की बाह्य चेष्टा मिटाना चाहे, पाप का चिंतवन न करे, मौन धारण करे, तथा गमनादि न करे, उसे अज्ञानी जीव गुप्ति मानते है। उस समय मन में तो भक्ति आदिरूप अनेक प्रकार के शुभरागादि विकल्प उठते हैं।**' शुभराग उठता है, वह गुप्ति नहीं। विकल्प उठे कि, मैं ऐसा चलूं, ऐसा न चलूं, वह तो राग है। गुप्ति तो आत्मा के आनन्द में लीन हो जाये। सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत ज्ञान और आनन्द का नाथ, स्वामी आत्मा, उसमें लीन हो जाये, उसका नाम गुप्ति है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- वह सब अन्दर में एक है। निश्चय वीतरागता।

'**इसलिये प्रवृत्ति में तो गुप्तिपना हो नहीं सकता। (सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आत्मा में लीनता द्वारा) वीतरागभाव होने पर जहाँ मन-वचन-काय की चेष्टा न हो वही सच्ची गुप्ति है।**' यह 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में से लिया है। 'टोडरमलजी' 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' के प्रणेता, उन्होंने यह कहा है। कहो, समझ में आया ?

'**मुनि प्रिय (अनुकूल) पाँच इन्द्रियों के पाँच रस,...**' अनुकूल पाँच रस, हाँ ! मोसंबी के मीठे रस में मीठास मानते नहीं। '**पाँच रूप...**' अनुकूल इन्द्राणी के रूप में सुख मानते नहीं। '**दो गन्ध...**' दुर्गन्ध, सुगन्ध। '**आठ स्पर्श...**' मुलायम (आदि) '**शब्दरूप पाँच विषयों में राग नहीं करते...**' लो ! अनुकूलता-प्रतिकूलता में (राग-द्वेष नहीं करते)। अनुकूलता में प्रेम नहीं, प्रतिकूलता में द्वेष नहीं। आत्मा में ऐसा वीतरागभाव प्रगट हो, उसका नाम यथार्थ गुप्ति कहने में आता है, उसको जितेन्द्रिय कहने में आता है। इन्द्रियाँ, इन्द्रिय के विषय, भावेन्द्रिय को (आत्मा में) एकाग्र होकर दृष्टि में से छोड़ दे, अन्तर में एकाग्र हो, उसको भगवान जितेन्द्रिय कहते हैं। समझ में आया ?

'अप्रिय (प्रतिकूल) ऊपर कहे हुए पाँच विषयों में द्वेष नहीं करते। -इस प्रकार पाँच इन्द्रियों को जीतने के कारण वे जितेन्द्रिय कहलाते हैं।' पाँच इन्द्रियों को जीतने के कारण। पाँच इन्द्रियों को जीतने के कारण जितेन्द्रिय (कहलाते हैं)। जीतने का अर्थ अतीन्द्रिय (आत्मा में) गये तो पाँच इन्द्रिय जीती ऐसा कहने में आता है। कान में लकड़ी डाल दी और आँख ऐसे बन्द कर दी, ऐसे जीता, ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की पूरी गाँठ है, आत्मा भगवान है। उसमें अन्तर में निर्विकल्प आनन्द में लीन हो जाना, उसका नाम धर्म, उसका नाम गुप्ति और उसका यथार्थ प्रवृत्ति, निश्चय समिति में आता है। दुनिया से दूसरी बात है, भैया !

मुमुक्षु :- गन्ने का रस मीठा तो लगता होगा न ?

उत्तर :- मीठा जाने। लगे क्या ? तुम्हें यहाँ क्या लगता है ? शक्कर मीठी है, ऐसा जानने में आता है। मीठास आत्मा में घूस जाती है ? (विशेष कहेंगे...)

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❋

निज वस्तु अखंड़-आनन्दकन्द चैतन्य है, - उसकी जिन्हें खबर नहीं, वे सब चलते-फिरते मुर्दे हैं । फिर चाहे, वे करोड़पति हों या बड़े राजा हों, पर अपनी चैतन्यलक्ष्मीका भान नहीं तो वे सब चलते-फिरते मुर्दे हैं । दुनियामें चतुराईसे पाँच-पच्चीस लाख कमाते हों, या लौकिकबुद्धिके खाँ बने घूमते हों: पर वे निज-प्रभुताके भान बिना, अपनी महानताके भान बिना नरकादिके अनन्त-अनन्त दुःख भोगेंगें - कि जिन दुःखोंका वर्णन करोड़ो जीभ द्वारा करोड़ो भव तक करें, तो भी न कर पायेंगें । निज प्रभुके भान बिना ऐसे अनन्त दुःख भोगने पडेंगे ।

(परमागमसार-४४२)